

जलधारा बहती रहे

डॉ. अपर्णा शर्मा

जलधारा बहती रहे डॉ. अपर्णा शर्मा



डॉ० (श्रीमती) अपर्णा शर्मा

शिक्षा : एम०ए० (प्राचीन इतिहास व हिन्दी)
बी०एड०
एम०फिल० (इतिहास)
पी-एच०डी० (इतिहास)

प्रकाशित रचनाएँ: **भारतीय संवतों का इतिहास** (शोध ग्रंथ)
(एस०एस० पब्लिशर्स, दिल्ली, 1994)
खो गया गाँव (कहानी संग्रह)
(माउण्ट बुक्स, दिल्ली, 2010)
पढ़ो-बढ़ो (नवसाक्षरों के लिये)
सरोज ने सँभाला घर (नवसाक्षरों के लिये)
(साहित्य संगम, इलाहाबाद 2012)
विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, पुस्तक समीक्षाएँ, कहानियाँ एवं कविताएँ प्रकाशित।
लगभग 100 बाल-कविताएँ भी प्रकाशित।
दूरदर्शन, आकाशवाणी एवं काव्य-गोष्ठियों में भागीदारी।

सम्पर्क : 'विश्रुत'
5, एम०आई०जी०, गोविन्दपुर
निकट अपट्रान चौराहा
इलाहाबाद-211 004 (उ०प्र०)
दूरभाष : +91-8005313626
E-mail : draparna85@gmail.com

ISBN 978-81-8097-190-7

Rs. 200.00

जलधारा बहती रहे

(काव्य संकलन)

जलधारा बहती रहे

(काव्य संकलन)

डॉ. (श्रीमती) अपर्णा शर्मा

साहित्य संगम

इलाहाबाद

I.S.B.N. : 978-81-8097-134-1

Rs. 200.00

प्रकाशक : साहित्य संगम, नया 100, लूकरगंज, इलाहाबाद
संस्करण : प्रथम, 2014

अक्षर संयोजन : प्रभा कम्प्यूटर्स, इलाहाबाद
मूल्य : दो सौ रुपये मात्र
मुद्रक : ग्राफिक आफसेट, इलाहाबाद
E-mail : sahitya_sangam@yahoo.co.in

Jaldhara Bahati Rahey
by
Dr. (Smt.) Aparna Sharma

समर्पण

साहित्य बोध कराने वाली

माँ

स्वर्गीय श्रीमती रतन देवी को

अनुक्रम

शुभेच्छा
जलधारा बहती रहे और तट निहारता रहे

–अशोक चक्रधर

कविता अपनी परिभाषाएं समय-समय पर बदलती रही है। अकेली कविता है जिसकी कोई एक परिभाषा नहीं हो सकती, क्योंकि वह एक तरह से चलती ही नहीं है। कभी समय के पीछे, कभी समय के साथ, कभी समय के आगे। अच्छी कविता वह होती है जो गुज़रे समय से सीख ले, वर्तमान का आकलन करे और भविष्य की ओर देखे। अपर्णा शर्मा की कविताएं अतीत पर गोली नहीं दागती और न भविष्य पर तोप के गोले बरसाती हैं। वे वर्तमान के पालने में यथार्थ को बिठाकर उसको झुलाती हैं और चाहती हैं कि डोर उनके हाथ में रहे।

कई बार वे बड़े कड़वे सच अपनी कविता में बख़ानती हैं। कभी गांधी जी के अनुयायियों पर, कभी उनके झंडे के नीचे पलते भ्रष्टाचार पर और सवाल करती हैं कि जनता क्यों मूक है। जवाब भी देती हैं कि मजबूरी इतनी गहरी है कि लोग अपनों से ही हार गए है। लीपा-पोती करते हैं और झेलना सीख गए हैं। कालाबाज़ारी, लूटपाट, बेबसी, और वहशीपन का बढ़ना इस प्रजातंत्र की हार है। ये हार निराशा की ओर ले जा सकती है, लेकिन उन्हें दिखाई देते हैं भ्रष्टाचार के खिलाफ खड़े हुए लोग। फिर वे दिग्भ्रमित हो जाती हैं कि जो लोग भ्रष्टाचार के ख़िलाफ खड़े हैं वे स्वयं कितना सदाचार आचरण कर रहे हैं। इसीलिए वे कहती हैं कि उनकी कविता चिर अनंत है। वह काल में बंधी हुई नहीं है। वह अतीत से और भविष्य से उस प्रकार नहीं जुड़ी हुई है, क्योंकि उसका कोई आदि और अंत नहीं है। वे डंके की चोट कहती हैं— 'कविता है मेरी चिर अनंत, ढूंढो ना इसका आदि अंत।'

चिर अनंत आध्यात्म में ले जाता है, लेकिन वे सदैव आध्यात्म में नहीं रहना चाहती। वे भावनाओं को बुद्धि के आवेग से बहाना चाहती हैं और कई बार चुनौती देती हैं तट को, तट जो कि धारा के सामने पुरुष के समान है। धारा बहती है, तट तटस्थ रहता है। वहीं जहां है और धारा आज की कहती है कि तट बस उसे छू भर

ले, उसे रोके नहीं, धारा बहती रहे। तट जब भी धारा के साथ बहने की कोशिश करेगा, ढह जाएगा, मर जाएगा। यह आज की स्त्री की चुनौती है। आज की स्त्री बहना चाहती है। समय के साथ और वह जो रूढ़िवादी विचार रखे हुए एक जगह स्थित तट है, वह उसका स्वयं का ढहना है, उसका मरघट है।

बहुत सारे सवाल उस तट पर टिकी सभ्यता के बारे में उठाती हैं अपर्णा। ख़ुद से समाज बनकर पूछती हैं कि किस क़दर सभ्य हो रहे हैं हम उस समय जबकि कितने ही घुसपैठिए ज़मीर को तार-तार करने पर आमादा हैं। क़दम-क़दम पर ख़ुदकुशी की राह पर बढ़ते जाना लाचारी बन गयी है। झूठी दिलासाओं से स्वयं को ढकते हुए हम आंख खोलकर भी सो रहे हैं और समझते हैं कि सभ्य हो रहे हैं महानगर में जिन्दगी तलाशते लोगों को जीने की राह दिखाने की कोशिश करती हैं वे। लेकिन बेख़ौफ ज़िन्दगी भला कैसे जी जा सकती है, जबकि इस बाजारवादी युग में लोग बोतलों में बन्द ज़हर पी रहे हैं और फ़ास्ट फूड के आदी हो चुके हैं।

अपर्णा की कविता युग के साथ सयानी होती हुई कविता है, जो राष्ट्र के बारे में, व्यक्ति के बारे में, उसके साधारण जीवन की विलक्षण प्रतिभाओं के बारे में, प्रजातंत्र के महानाटक और भ्रमजन्य संसार के बारे में टिप्पणी करती हैं। वे जानती हैं कि ये देश सबसे युवा देश है। और ये युवा अपने घुंघराले बालों और काली आंखों के साथ खुलकर नाचते, गाते कितना देखना सीख पाए हैं, यह एक सवाल है। महीना जून का हो या जनवरी का, सवाल दो जून की रोटी का ही सालता रहता है। सालती है महंगाई, सालता है नारीत्व का रास्ता जो उसे जहाँ-तहाँ कमजोर और मजबूर करता है। वह जानती है और अवसरों को भी पहचानती है। सहज गति से उसको चलने दिया जाए, ऐसा मानती हैं अपर्णा।

अपर्णा नारी के अस्तित्व को बार-बार रेखांकित करती हैं। भारत की नारी के बारे में बात करती हैं जो खेती और खलिहानी, बागों की निगरानी करते हुए पशुओं को चारा देती है, जो खड़े पहाड़ों पर अकेली चढ़ जाती है और मेहनत से डरती नहीं है ंजो बछेन्द्री की तरह एवरेस्ट पर झंडा फहराती है और विधि ज्ञान को आज समझने लगी है। वेद-पुराणों का गोपन रहस्य भी जानती है। वह घर की डोरी थामे हुए समाज का पूरा ड्रामा देखती है। ख़ुद्दारी के साथ जीने की कामना करती है और बार-बार कहती है कि मैं हूँ, यदि जान सको मुझको, पहचान सको मुझको तो मानो कि मैं हूँ।

इस संकलन की प्रायः सारी कविताओं में कुछ अधूरे को पूरा करने का सपना है। जहाँ कलुषता को निष्ठा से जीतने का संकल्प है और सन्मार्ग पर चलने वाले कदम के लिए अभिनन्दन है। उन्हें नहीं लगता कि सब कुछ इसी जन्म में अच्छा हो जाएगा। उन्हें याद आते हैं कृष्ण जो कहते हैं कि यदा-यदा ही धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत... शायद कृष्ण दुबारा आएंगे । आतंकी की चिट्ठी पढ़ेंगे, उसकी भी जानेंगे और शायद महाभारत के युद्ध के समान देश के अर्जुनों को कहेंगे कि जिनको मारना है उनको तो मारना ही है। यहां कोई अपना पराया नहीं है, धर्मयुद्ध है। समय एक धर्मयुद्ध है, जिसने जीवन को मोड़ा है।

अंधकार कितना भी आए वह हमें विचलित न करे, ऐसा उनकी कविताएं चाहती हैं। श्रम की ज्योति जलाकर जीत को निश्चित अवसर प्रदान करना चाहती हैं और पुकारती हैं अतीत को। पुकारती हैं गांधी को। ढूंढती हैं अहिंसा को, क्योंकि शासन विखंडित होता दिखाई नहीं देता और दिखाई देता है कबीर का रोना कि वह क्यों आज चदरिया तानकर सोया हुआ है? क्यों नहीं बदलता इस समाज को ? क्यों नहीं कविता मुक्त होती काव्यशास्त्र से? क्यों नही मन मुक्त होता शास्त्रीयता से? मन जिन्दगी को कैसे आगे बढ़ाए और कविता कैसे अतीत, वर्तमान और भविष्य का सेतु बने, ये चाहती हैं अपर्णा शर्मा की कविताएं। मेरी कामना है कि कविता की जलधारा बहती रहे और तट वहीं स्थित रहकर निहारता रहे, देखता रहे जलधारा का बहना। अब और क्या कहना! खूब सारी शुभकामनाएं!!



नई दिल्ली। **(अशोक चक्रधर)**

मेरी कविता

कविता है मेरी चिर अनंत
ढूँढ़ो ना इसका आदि-अंत।
हर अंकुर में छिपी हुई यह
आकाश भूमि पर विद्यमान।
यह तो गूँजेगी बार-बार
आयेगा जब भी मधु बसंत।

कविता है मेरी चिर अनंत
ढूँढ़ो ना इसका आदि-अंत।
हर यौवन की यह है पुकार
हर जीवन का है छिपा सार।
होगी मुखरित अंतर्मन से
आयेगा ज्यों ही निकट कंत।

कविता है मेरी चिर अनंत
ढूँढ़ो ना इसका आदि अंत।
युवती के दिल में सहज ठहर
माँ के आँचल से गई सँवर।
बालक की कोमल सी पुकार
हर दिन को करती है सुखांत।

कविता है मेरी चिर अनंत
ढूँढ़ो ना इसका आदि अंत।

गाँधी के झंडे के नीचे

गाँधी के झंडे के नीचे
पलते भ्रष्टाचार हैं।
जनता सारी मूक हो गई
कर्णधार लाचार हैं।
मज़बूरी इतनी गहरी है
अपनों ही से हार गए।
लीपा-पोती की बहुतेरी
खुल सारे व्यापार गए।
झुका शर्म से शीश हमारा
जीभ हुई बेकार है।

गाँधी के झंडे के नीचे
पलते भ्रष्टाचार हैं।
जनता सारी मूक हो गई
कर्णधार लाचार हैं।
इस कुर्सी की ख़ातिर हमने
देखो क्या-क्या खेल किया।
आतंकी काला बाजारी
लूट-पाट से मेल किया।
यहाँ बेबसी वहाँ बेबसी
प्रजातन्त्र की हार है।

गाँधी के झंडे के नीचे
पलते भ्रष्टाचार हैं।
जनता सारी मूक हो गई
कर्णधार लाचार हैं।
सत्ता में बैठे वो देखो
घोटालों को घोट रहे।

दोष नहीं है उनका कोई
बार-बार यह बोल रहे।
देश चलेगा ऐसे ही अब
उनके यही विचार हैं।

गाँधी के झंडे के नीचे
पलते भ्रष्टाचार हैं।
जनता है अब खड़ी हो गई
कर्णधार लाचार हैं।

सरेआम

घर की न सोच पाये
बाहर की सोच लेते।
मज़बूर ही अगर थे
ओ बादशाह अपने।
दिल में ही उसको रखते
सरेआम तो न कहते।
मज़बूर यदि तुम हो
बुधिया क्या करेगा?
फ़रियाद अपनी लेकर
किस ठौर को चलेगा?
थे धोती कुर्ता वाले
बालिश्त भर की टोपी।
दुश्मन से लड़ गए वे
मजबूर न हुए थे।
यह लोकतंत्र अपना
सबसे बड़ा जहाँ में।
कैसे यह चलेगा,
इस पर भी बोल देते।
सियासत में क्यों फँसे हो,
उम्र संन्यास की तुम्हारी।
मजबूरी कुर्सी की है
त्यागपत्र की नहीं है।
उम्मीदों को बचा लो
पगड़ी जरा सम्भालो।

अपनी बचा न पाये
पंजाब की बचा लो।
ये मीडिया की नज़रें
देखती हैं तुमको।
घर की न सोच पाये
बाहर की सोच लेते।

पेंशन

झाड़ती–बुहारती, सहेजती–सँवारती,
काढ़ती–बुनती, सींती–पिरोती,
छानती–बीनती, कूटती–पीसती,
गूंथती–माँड़ती, छौंकती–भूनती,
माँ
बूढ़ी हो गई एक दिन।
बेटा इंजीनियर बना,
इंजीनियर लड़की से शादी हो गई।
बेटी डॉक्टर बनी,
डॉक्टर से ब्याही गई।
पति सरकारी दफ्तर से रिटायर हुए
पेंशन पा गए।
माँ के पास कोई प्रमाण–पत्र न था।
उसका कोई कार्य–अनुभव न था।
उसका कोई कार्य–विवरण भी न था।
वह केवल
जवान से बूढ़ी हुई थी।
उसने किसी वेतनमान में
कार्य नहीं किया था।
तब वह पेंशन कैसे पाती?

ओ बीज

इसके पहले कि तुम उगो
ओ बीज, मैंने तुम्हें मिट्टी से ढाँपा था।
साथ रोपे थे
अपनी उम्मीदों के बीज।
मेरे मन ने दिया था मुझे
एक ऐसा प्रलोभन
कि तुम उगोगे, फैलोगे
और छा जाओगे मेरे आँगन में।
मैं निरंतर तुम्हें सींचते हुए
देखूंगी हर दिन बढ़ते,
फूलते और फलते।
मैं तुम्हें सहेजूंगी
तुम्हारा अंश पोषित करेगा
मेरी आने वाली पीढ़ियों को।
आह, मगर मैं तुम्हें रोपते और ढाँपते हुये
जान नहीं पाई,
तुम तो वंशहीन हो।
तुम उगोगे, फूलोगे और फलोगे
मात्र पेट भरने के लिये।
तुम्हारा सहेजा जाना
पुनः फल नहीं दे सकेगा मेरी सन्तानों को।
इसके पहले कि तुम उगो
ओ बीज मुझे बताओ–
अपनी भूखी सन्तानों को

रोपने और ढाँपने को
मैं क्या दे सकूँगी?
ओ बीज तुमने बीज होकर भी
अपना बीजत्व क्यों खो दिया,
कुछ तो कहो?
शायद तुम्हारी दर्द दास्ताँ ही
मेरी सन्तानों की
मुक्ति का मार्ग खोल दे।

तुम क्या जानो?

बिटिया रानी तुम क्या जानो,
बचपन की वे अजब कहानी।
खुले गगन में तारे गिनना,
बड़े-बड़े तारों को चुनना।
तरह-तरह के सपने बुनना,
सपनों ही में खोते जाना।
बड़े थाल सा चमके चंदा,
बदली में उसका गुम जाना।
लुका-छिपी का खेल खेलना,
नये नाप में हर दिन आना।
सुबह हुई चंदा खो जाना,
नदी पार सूरज उग आना।
बिटिया रानी तुम क्या जानो,
बचपन की वे अजब कहानी।
बैठ छाँव में बादल तकना,
बादल का बदली रह जाना।
नन्हें टुकड़ों में बँट जाना,
नई-नई आकृतियाँ गढ़ना।
बादल के छोटे टुकड़ों का,
थके पथिक की छाया करना।
छाते जैसा उस पर तनना,
दूर राह उसको पहुँचाना।
चलते-चलते यूँ सुस्ताना,
बीच राह अमियों का खाना।
बिटिया रानी तुम क्या जानो,
बचपन की वे अजब कहानी।
रस्ता पगडंडी का चलना,
पौधों से गलबहियाँ मिलना।
हरी भरी मन भाती फसलें,

हँसती खिलती कलियाँ उनमें।
नन्हें नन्हें अंकुरों का,
धीरे से पौधे बन जाना।
वहीं फुदकती नन्हीं चिड़िया,
देख मुझे फुर्र से उड़ जाना।
बड़े मोर का नाच देखना,
औ कोयल का गीत सुनाना।
बिटिया रानी तुम क्या जानो,
बचपन की वे अजब कहानी।
सुख कितना गहरा देता है,
खुले हुए अँगना का होना।
चाहे जैसे पसरो बैठो,
धूप सुबह की जी भर लेटो।
अम्मा के खर्राटों से बच,
अंगना में गिट्टु का चुनना।
दादी के गीतों का सुनना,
गुड़िया के टोपे का बुनना।
हर दिन उसका ब्याह रचाना,
गुड्डे के संग विदा कराना।
बिटिया रानी तुम क्या जानो,
बचपन की वे अजब कहानी।
सावन के झूले का डलना,
होली के फ़ागों का सुनना।
डाली से फूलों का चुनना,
तितली जैसी दौड़ लगाना।
सखियों के संग धमा-चौकड़ी,
कभी रुठना कभी हँसाना।
किस्सा सात रानियों वाला,
कई दिनों तक चलते रहना।
सुनना नानी के घर जाकर,
दूध-मलाई, रबड़ी खाना।

बिटिया रानी तुम क्या जानो,
बचपन की वे अजब कहानी।
तुमने तो देखा है कमरा,
देखी है फ्लैटों की दुनियाँ।
बंद कमरे में टी.वी. देखा,
सीखा है कम्प्यूटर तुमने।
भरी भीड़ में धक्का देकर,
खुद आगे बढ़ना सीखा है।
मोटर के पीछे हो दौड़ी,
बहुमंजिल चढ़ना सीखा है।
मोटा चश्मा लगा नाक पर,
बस पुस्तक पढ़ना सीखा है।
बिटिया रानी तुम क्या जानो,
बचपन की वे अजब कहानी।
गिरते को दे हाथ सहारा,
बीच सड़क से पार लगाना।
दादी की मंदिर की डलिया,
हौले से उन तक पहुँचाना।
बाबा के चश्में से तुमने,
देखी नहीं बड़ी आकृतियाँ।
अरे नहीं देखा है तुमने,
ताऊ जी का छड़ी घुमाना।
डाँट अगर मुझको दे भाई,
दादा का उस पर गुर्राना।
बिटिया रानी तुम क्या जानो,
बचपन की वे अजब कहानी।

बाँटना सब लम्हे खुशी के

बाँटना सब लम्हे खुशी के
दर्द को रखना छिपाकर।
दर्द ही है
जो तेरी
तन्हाइयों में
साथ देगा।
इन्सान जीना चाहता बस
सुखद जीवन ही हमेशा।
है मगर क्षण मात्र
रंगीन दुनियाँ
भ्रम है केवल।
है निरंतर,
है अटल जो
दर्द से ही जन्मता है।
है मधुरता उन क्षणों में
कष्ट सहकर जो मिले हैं।
छोड़ देंगे जब तुझे
स्वप्न ये सारे सजीले।
दर्द हर क्षण साथ होगा
दर्द से जीवन मिलेगा।
बाँटना सब लम्हे खुशी के
दर्द को रखना छिपाकर।

गाज गिरती है

चारों ओर गाज गिरती है,
बिजली नहीं चमकती है।
जिसे देख द्रवित हों कवि,
बदली नहीं वह उठती है।
शरशैय्या पर भीष्म पितामह,
बाट जोहते उत्तरायण की।
पल में प्राण निकल जाता अब,
इच्छित मौत नहीं मिलती है।
भौतिक सुख से घिरा है मानव
प्राकृतिक दृश्य अलभ्य हो रहे।
उषा की लालिमा किधर है
इसकी पहचान नहीं मिलती है।
बचपन बौना होता जाता
पलक झपकते यौवन आता।
माँ की गोदी में माखन खा लें
इतनी फुरसत नहीं मिलती है।

बिगड़ी बात

समय गुजर जाता है लेकिन,
बिगड़ी बात नहीं बनती है।
ऐसी एक आँधी आई जो,
उड़ा ले गई कितने साये।
लाख ढाँप दो हमदर्दी से,
उजड़ी बस्ती कब बसती है?
समय गुजर जाता है लेकिन,
बिगड़ी बात नहीं बनती है।
मिटा दिया कुलदीपक जिसका,
अश्रुपूर्ण हो गया सवेरा।
चाहें लाख यत्न कर लो तुम,
दिल से आह नहीं मिटती है।
समय गुजर जाता है लेकिन,
बिगड़ी बात नहीं बनती है।

जलधारा

मैं बहती स्वछंद जलधारा हूँ,
तुम तटस्थ किनारा हो।
छू भर लो मुझे बस,
बढ़ने का प्रयास न करना।
ढह जाओगे, बह जाओगे,
बिछड़ जाओगे अपनों से,
अस्तित्व भी न रहेगा तुम्हारा।

दो बर्र

पिछले दो दिनों से
मेरी खिड़की के शीशे में
आ फँसे दो बर्र
आज़ादी की लड़ाई लड़ रहे हैं।
अन्तर्मन ने कई बार
प्रेरित किया
कि मैं उन्हें आज़ाद कर दूँ।
परन्तु बचपन में गहरे बैठे
भय ने रोक दिया।
मैं दिन में तीन-चार बार
उनकी जंग देखती हूँ।
उनका क्रोधित स्वर
मुझे परेशान करता है।
मुझे उनकी नादानी पर
तरस आता है-
आखिर इतने लम्बे समय से
ये शीशे की ओर ही
क्यों सिर पटक रहे हैं
कमरे का रास्ता
क्यों नहीं अपनाते।
ये पाठशाला नहीं गए हैं
इसीसे जीने के
कृत्रिम तरीकों को नहीं सीखा है।
ये मात्र अंधेरे और उजाले के
अर्थ समझते हैं
तभी तो बार-बार
उजाले की ओर सिर पटकते हैं।
न, न, ऐसा नहीं है

मैं ही नादान हूँ
जो अंधेरे और उजाले के
अर्थ नहीं समझ पाई।
ये मूक पतंग
इन अर्थों को
बखूबी समझते हैं-
उजाला ही तो आजादी है
कैद का सही अर्थ
अंधेरा ही तो है।

सभ्य हो रहे हम!

किस कद्र सभ्य हो रहे हम!
जानते हैं, हैं कई घुसपैठिये
तार-तार कर रहे ज़मीर को
जानकर भी आज सब
मौन हो रहे हम।
किस कद्र सभ्य हो रहे हम!

जानते हैं मानते हैं डिग गए ईमान से
कदम अपने बढ़ रहे हैं
ख़ुदकुशी की राह पर।
हार को भी जीत की
झूठी दिलासाओं से ढक रहे हम।
किस कद्र सभ्य हो रहे हम!

सामने हैं दृश्य घृणित दीखते
हादसे कितने गुजरते हैं मगर
आँख खोलकर भी आज
क्यों सो रहे हम?
किस कद्र सभ्य हो रहे हम!

सभ्य का पर्याय मौन बन रहा
देखले, समझे, सुने और चुप रहे
आज ऐसा ही चरित्र चाहिये
सभ्य होने की आड़ में कितनी ही
अनहोनियों को ढो रहे हम।
इस कद्र सभ्य हो रहे हम।

ज़ीने

जीने को भटकते लोग
महानगर में
ज़ीनों से जीने का
सहारा तलाशते हैं।
सड़क किनारे उगे ज़ीने
उन्हें कदम टिकाने भर की
मोहलत मुहैया कराते हैं
ज़ीनों पर लगे छज्जों में
उनकी रोजी-रोटी, परिवार
सब समा जाता है।
ये एहसानमंद हैं
इस लौह युग के
जिसके मुहैया कराये ज़ीने
दो फिट ज़मीन पर टिके होकर
सड़क किनारे के चार फिट छज्जे
मुहैया कराते हैं
और इन जीने को तरसतों को
जीने की राह दिखाते हैं।

बेख़ौफ ज़िंदगी

वे बोतल में बंद नशा पी रहे हैं,
उन्हें पीने दो।
वे बोतल में बंद जहर पी रहे हैं,
उन्हें पीने दो।
उन्हें जूस और अंकल चिप्स
पर जीने दो।
उनका होश में आना
लगभग नामुमकिन है।
उनकी दिनचर्या ने उनकी सोच को
बना दिया है पंगु।
उनके लिये संभव नहीं
सुख/दुःख में भेद कर पाना।
पर ऐ आम आदमी
तू क्रान्तियों का वाहक है।
सारी नैतिकता, सारा दर्शन
तुझ से होकर गुजरा है।
कठिन से कठिन जीवन
जीया है तूने
तब ज़हरीले पेय को
क्यों निहारता है?
जहर पीने को खुद को
क्यों सँवारता है?
ऐ आम आदमी
तू अपने अभावों में
सुख को खोज
ज़हर से बच, नशे से हट
तू ही बेख़ौफ
ज़िंदगी जी सकता है।

दिन का प्रारंभ

मेरे दिन का प्रारंभ
होता है
पाइप से पानी चूस रहे
पम्प के साथ।
गली के नुक्कड़ पर लगे
कचरे के ढेर के साथ।
उस पर कचरे के लिये लड़ते
मासूमों को देखना
प्रतिदिन का क्रम
बन गया है।
कभी-कभी कचरे के टुकड़ों में
यह तय कर पाना
मुश्किल होता है
कि वह
इन्सान की जरूरत का अधिक है
या जानवर की।
ये दृश्य, ये विचार
मुझे मनन, चिंतन को
प्रेरित करते हैं
क्रियाशील बनाते हैं।
एक प्रहर बीतने पर
श्रमहीनों का श्रम सोखने को
धड़-धड़ाते जनरेटर
कुछ सोचने की
सामर्थ्य ही नहीं छोड़ते।

कविता रानी

अपने युग की कविता भी तो,
देखो अब है हुई सयानी।
वक्रोक्ति, अन्योक्ति से भी,
भ्रांति और संदेहों से भी,
भाता नहीं अलंकृत होना,
इसको तो उपमानों से भी,
ये स्वयं है उज्ज्वल रानी,
देखो अब यह हुई सयानी।

दूषित नहीं रसों से होती,
लिप्त नहीं संयोग-वियोग में,
नहीं हास-परिहास उड़ाती,
वीरों की गाथाओं को ये,
भूल चुकी है कथा पुरानी,
देखो अब यह हुई सयानी।

कठिन काव्य की नीरस बातें,
केशव की वे भुतही रातें,
तनिक नहीं है मन में लाती,
छंद-ताल के मोह जाल से,
मुक्त हुई ये मुक्ता रानी,
देखो अब यह हुई सयानी।

नारी नहीं अलंकृत होती,
कविता भी है नहीं अलंकृत,
छोड़ रही वस्त्रों को नारी,
कविता छोड़े रस की सारी,
भूल रही ये राह पुरानी,
देखो अब यह हुई सयानी।

कष्ट नहीं है चीर-हरण से,
नहीं वरण अथवा सुवरण से,
भीष्म मौन थे बैठे जैसे,
वैसे मौन समीक्षक भी हैं,
कौन करे इसकी निगरानी?
देखो अब यह हुई सयानी।

मुक्त नहीं है कविता केवल,
मुक्त हुए भई कवि महोदय,
राष्ट्र मुक्त उन्मुक्त मनुजगण,
कवि भी क्यों न करे मनमानी,
कविता रचते हैं अनजानी,
देखो अब यह हुई सयानी।
अपने युग की कविता भी तो,
देखो अब है हुई सयानी।

जीवन मेरा

साधारण सा जीवन मेरा, नहीं विलक्षण प्रतिभाएँ।
कार्य नहीं हैं कोई ऐसे, औरों के जो मन भाएँ।।
मैं हूँ मात्र अंकिचन जीवन, नहीं स्वप्न कोई पाला।
उलझ-पुलझ झंझावातों से, जीवन को हर दिन ढाला।।
कल तक पिछड़ी कहलाती थी, बनती थी बस मधुबाला।
आज बड़ी हस्ती कहलाती, अंतर में अब भी ज्वाला।।
अगर कभी कल्याणी होकर, इस युग को कुछ दे पाऊँ।
सफल समझ लूँ जीवन अपना, छोटी सी है अभिलाषा।।

माहौल चुनावी

गरमाया माहौल चुनावी,
भरमाया वोटर बेचारा।
बड़े-बड़े नेता आते हैं,
हलुआ पूड़ी बँटवाते हैं।
अब तक के दुःखों का कारण,
वे दूजे को बतलाते हैं।
नही दिया है बिजली पानी,
नहीं बनी सुन्दर रजधानी।
हुआ किसान त्रस्त है देखो,
सूख रही खेती खलिहानी।
वोट हमें दो हैं समझाते,
वादे बड़े-बड़े कर जाते।
गरमाया माहौल चुनावी,
भरमाया वोटर बेचारा।
कुछ नेता ऐसे आते हैं,
मानों द्रवित हुए जाते हैं।
शोषण हुआ तुम्हारा हरपल,
वोटर को वे बतलाते हैं।
बात नहीं पर बतला पाते,
आखिर खुद क्या करना चाहें।
ना ही शोषण से बचने की,
राह नई दिखला पाते हैं।
वोट हमें बस अब तुम दे दो,
धीरे से यह कह जाते हैं।
गरमाया माहौल चुनावी,
भरमाया वोटर बेचारा।
समय बहुत कम हमने पाया,
इसीलिये कुछ हो ना पाया।

काम बड़े थे हमको करने,
हाय विपक्ष ने खेल बिगाड़ा।
बीती बातें छोड़ो भैया,
पार लगाओ अब तुम नैया।
युग बदला है बदली दुनियाँ,
इसीलिये वादे भी बदले।
बुरा नहीं मानो जी अब तुम,
एक मौका हमको बस दे दो।
गरमाया माहौल चुनावी,
भरमाया वोटर बेचारा।
किसकी माने किसको छोड़ें,
खड़े सभी हाथों को जोड़ें।
किसके वादे होंगे सच्चे,
समझ नहीं है उसको आया।
नित्य नई बातें सुनता है,
जब उनको मन में गुनता है।
ख़्वाब अनोखे उसको आते,
खींच बूथ तक हैं ले जाते।
बार-बार वह भ्रम में फँस कर,
करता है मतदान बराबर।
गरमाया माहौल चुनावी,
भरमाया वोटर बेचारा।

वह लड़का

वह काली आँखों
और घुंघराले बालों वाला लड़का
फटी कमीज और मैले निक्कर वाला लड़का,
क्या चाहता है?
रंगीन लिबास लोगों को
पौ-पौ, पी-पी करते वाहनों को
धुआँ उड़ाती दौड़ती गाड़ियों को
टुकर-टुकर निहारता वह लड़का।
क्या चाहता है?
भाषण दे रहे नेता को
पुलिसमैन की गालियों को
पान की दुकान पर बजते गानों को
सुनता गुनगुनाता
अपने ही ख़्यालों में खोया वह लड़का।
क्या चाहता है?
पेट की भूख, बदन के मैल को सहता हुआ
टूटी चप्पलों के साथ पैरों को घसीटता हुआ
धीरे-धीरे मुस्कुराने वाला वह लड़का,
आख़िर क्या चाहता है?
शायद वह चाहता है
रंगीन कपड़े, स्टाइलिश चश्मा, महँगा मोबाइल,
मल्टीप्लेक्स में मूवी,
खुलकर गाना, नाचना, दिल खोलकर हँसना
और शायद इतना सब भी नहीं
वह केवल दो जून
रोटी चाहता है।

हे हरी

हर पल जो सालता फल हमको
क्यों न विचारें उसको हम?
सब कर्म ठिठक रह जाता है
जब परिणाम सामने आता।
सुख के दिन क्षण मात्र हुए
दुःख की छाया गहरी है।
चीर-हरण की घटना सी
अंतर्मन को मथ देती है।
हम लाख भुलाना भी चाहें
जीवन भर खिंचती जाती है।
हरी पुनः भू पर आओ
क्या परिभाषा नैतिकता की,
आकर फिर से समझाओ।
देखो तो इस बार यहाँ
उपदेश किसे तुम दोगे अब?
अर्जुन जैसा है शिष्य नहीं
जो रणभूमि में धैर्य धार
सुनता था गीता अमृत को।
अब जीवन का हर पल रण है
रणभूमि में जाना ही क्या?
खोज नई करनी होगी
भू के इक ऐसे कोने की
उपदेश जहाँ तुम दो हमको
औ रणभेरी का भय न रहे।
हर पल जो सालता फल हमको
क्यों न विचारें उसको हम?

न बूझो

सहज चलने दो अपनी राह
नारी विमर्शियों
न बूझो उसकी चाह।
तुमने उठाया पर्दे पर प्रश्न
वह हो रही निर्वसन।
तुमने किया रोज़गार का सवाल
वह हो रही बेहाल।
तुमने चाहा विकास में बढ़ाये हाथ
उससे छूट गया अपनों का साथ।
तुमने उसे सौंप दिया शासन
बिगड़ गया अनुशासन।
नारी शुभचिंतकों ने उठा दिये वैश्यालय
भोजनालय बन गए वैश्यालय।
न दो ऐसी राह कि रास्ता ही भटक जाय।
न दो ऐसी चाह कि नारीत्त्व ही भूल जाय।
नारी कब, कहाँ, कितनी,
कमजोर, मजबूर और अधूरी होती है
वह स्वयं जानती है
वह अवसरों को खूब पहचानती है।
सहज चलने दो अपनी राह
तुम न बूझो उसकी चाह।
नारी विमर्शियों...

मैं हूँ

यदि जान सको जानो मुझको,
पहचान सको पहचानो तुम।
ना मैं भोली दमयंती हूँ,
तुम भी तो नहीं राजा नल हो,
जो सोती घने जंगलों में,
यूँ ही अकेली छोड़ सको।

यदि जान सको जानो मुझको,
पहचान सको पहचानो तुम।
ना मैं मजबूर द्रोपदी हूँ,
तुम भी तो नहीं युद्धिष्ठिर हो,
जो बिन मेरी सहमति के ही,
हिस्सों में मुझको बाँट सको।

यदि जान सको जानो मुझको,
पहचान सको पहचानो तुम।
ना कान्हा की मैं राधा हूँ,
ना ही तुम छलिया मोहन हो,
विरहा में मैं जलूँ रात दिन,
औ तुम उद्धव को भेज सको।

यदि जान सको जानो मुझको,
पहचान सको पहचानो तुम।
मैं शंकर की शक्ति गौरी हूँ,
गणपति की भोली माता हूँ,
विपरीत अवस्था में मैं ही,
दुर्गा भी हूँ चण्डी भी हूँ।

यदि जान सको जानो मुझको,
पहचान सको पहचानो तुम।
सही राह सब दिखलाने को,
सही बात सब समझाने को,
विद्योत्मा कालिदास की मैं,
मैं ही तुलसी की रत्ना हूँ।

यदि जान सको जानो मुझको,
पहचान सको पहचानो तुम।

भारत की नारी

देखो यह भारत की नारी,
कोई काम न इसको भारी।
खेती औ खलिहानी करती,
बागों की निगरानी करती।
देती है पशुओं को चारा,
चलती इससे दुनियादारी।
देखो यह भारत की नारी,
कोई काम न इसको भारी।
खड़े पहाड़ों पर चढ़ जाती,
मेहनत से नहीं घबराती।
झंडा ऊँचे पर लहराती,
बछेंद्री है हमारी प्यारी।
देखो यह भारत की नारी,
कोई काम न इसको भारी।
पुस्तक पढ़ती कविता गढ़ती,
ज्ञान और विधिज्ञान समझती।
बातें खूब समझ लेती है,
वेद पुराणों की भी सारी।
देखो यह भारत की नारी,
कोई काम न इसको भारी।
कठिन समय में शस्त्र उठा ले,
राजनीति है ये सम्भाले।
सुलझा लेती मुश्किल सारी,
है फिर भी अनुशासित नारी।
देखो यह भारत की नारी,
कोई काम न इसको भारी।
दुनिया भर की सब बातों में,
अब है इसकी भागीदारी।

उच्चपदों पर है यह रहती,
तब भी है संस्कारित नारी।
देखो यह भारत की नारी,
कोई काम न इसको भारी।
हैं इसके परिधान अनोखे,
पाती है सम्मान अनोखे।
किन्तु सभी को पीछे छोड़े,
इसकी अपनी साड़ी न्यारी।
देखो यह भारत की नारी,
कोई काम न इसको भारी।
घर की डोरी थामी इसने,
समझी है पूरे समाज की।
देश और परदेशों में भी,
सम्मानित इसकी खुद्दारी।
देखो यह भारत की नारी,
कोई काम न इसको भारी।

गारंटी

क्या कहा?
गारंटी दे दूँ–
इस छोटी सी मशीन की?
नहीं, भाई, गारंटी
मेरे वश की बात नहीं।
चाहो तो एक गिफ्ट ले लो।
महंगाई का ज़माना है
गारंटी की बात न कहो।
क्या कहा?
नहीं, चलेगा?
अरे भाई,
क्यों उस बात पर अड़ते हो
जो मैं कर ही नहीं सकता।
अच्छा एक टी सेट
और गिफ्ट ले लो।
त्योहार का मौका है
काम आयेगा।
अब भी 'नहीं'?
अरे, इसकी गारंटी माँगते हैं आप?
पचास रुपये के मटके जितना
काम है इसका।
यह तो हमारी बेरोजगारी है
जो घर-घर भटक कर
बेक रहे हैं।
इन्सान पूरी जिंदगी
इसी उम्मीद में बिता देता है,
बुढ़ापा अच्छा बीतेगा।
ज़िंदगी बेकार निकल जाती है

बुढ़ापा खराब हो जाता है
कहाँ मिलती है गारंटी ज़िंदगी की?
इन्सान बालक को पैदा करता है,
पालता है।
अपनी कोशिश भर अच्छी
परवरिश करता है।
बालक एहसान फ़रामोश
निकल जाता है।
कोई लेता है उसकी गारंटी?
बदली होती है कहीं?
बीवी को घर लाता है,
घर उसे सौंप देता है,
वह सब कुछ बटोर कर
चली जाती है,
कोई आँसू पोंछने भी नहीं आता,
घर में मुँह छिपाकर
रोना पड़ता है।
जिस पढ़ाई में आदमी
बचपन से जवानी तक
जुटा रहता है।
वह बेकार निकल जाती है।
इंजीनियरिंग की डिग्री लेकर
चुपचाप ठेकेदार हो जाता है,
कहीं चूँ तक नहीं करता।
उल्टा इंजीनियरी की गरिमा को
अपने बूते पर बनाये रखता है।
आप इस हजार रुपये की
गारंटी माँगते हैं?
ऐसा अन्याय न करो, भाई मेरे,
महंगाई के जमाने में गारंटी

सबसे महंगी चीज है
मैं ग़रीब कहाँ से लाऊँ?
हाँ, आप चाहो तो
एक बात की गारंटी
दे सकता हूँ–
आपकी पढ़ाई, बीवी, बच्चों
और दोस्तों से
अधिक वफ़ादार है।
बस और कुछ न कहना
मत करना
गारंटी का ज़िक्र दोबारा
भाई मेरे,
महंगाई का ज़माना है।

मैं पड़ौसी हूँ

मैं पड़ौसी हूँ
निकट पड़ौसी हूँ।
मेरे करीब के घर में
आज शायद कुछ खुशी हैं?
मेरे पड़ौसी का चेहरा मुस्कान भरा है
और मेरा तनावग्रस्त।
मेरे मन में उथल-पुथल है
उसकी खुशी को जानने की।
मेरी बेचैनी बढ़ रही है,
उसके मंगल-गान के साथ।
वह मुझे बुलाना तो चाहता है
मगर खुशी की वजह छिपाकर
तब क्या उसका आतिथ्य
मेरे लिये समादरित है?
नहीं, कदापि नहीं।
मैं निकट पड़ौसी हूँ
मेरे करीब के घर में
आज शायद कुछ
अनिष्ट हुआ है।
मैं शरीक तो होना चाहता हूँ
उसके गम में,
केवल लटके चेहरे के साथ
दुःखित हृदय से नहीं।
इस रूप में मेरे जाने का औचित्य
नहीं, कदापि नहीं।
मैं निकट पड़ौसी हूँ।

मैं हैरान हूँ
यह सोचकर-
जिस पड़ौस को मेरे पुरखों ने
बरसों से निबाहा था
कब और कैसे मैंने उसे खो दिया?
मैं निकट पड़ौसी हूँ
पड़ौसी के सुख दुःख बाँटने के
संबंधों से रहित।
यह मेरा ही छेड़ा सिलसिला है।
अपने रहस्य की गूढ़ता की चाह ने
मुझे वंचित कर दिया है
पड़ौसी के अपनत्व से।
मैं निकट पड़ौसी हूँ
मात्र निकट पड़ौसी,
शायद इससे अधिक
कुछ भी नहीं।

सुगंध

अनाज से उठने वाली सुगंध
सर्वोत्तम सुगंध है।
यह पालती है इन्सानों को
और देती है उन्हें
अन्याय से लड़ने की ताकत।
पेट भर जाने पर
इन्सान इसे पहचान नहीं पाता,
तब उसे चाह होती है
जूही और चमेली की।
ये उसे अकर्मण्यता की ओर
ढकेलते हैं।
ये उसे सिखाते हैं
इन्सान-इन्सान में भेद,
ये उसे ले जाते हैं बहुत दूर
मानवता के गूढ़ रहस्यों से,
ये उसे प्रदान करते हैं
एक संवेदनहीन हृदय,
तब वह यह भूल जाता है
कि जिस गंध पर
उसका अस्तित्व टिका है
वह कैसे उगती है,
कैसे फैलती है,
क्यों वह सर्वोत्तम है
और वह कितनी स्थाई है।

प्याज

आलू से नहीं, कचालू से नहीं,
सब्ज़ी से नहीं, रोटी से नहीं,
दाल से नहीं, भात से नहीं,
गुड़ से नहीं, चीनी से नहीं,
हल्दी से नहीं, मिर्च से नहीं,
बेसन से नहीं, आटे से नहीं,
सोने से नहीं, चाँदी से नहीं,
गंगा से नहीं, यमुना से नहीं,
अपने हिन्दुस्तान में
प्याज से गिरती हैं सरकारें,
लहसुन से बदलती हैं सरकारें।
प्याज का शोर
पहुँचता है
गलियारे से संसद तक।
सरकारें झुक जाती हैं।
टकसालें खुल जाती हैं।
पड़ौसी मुल्क़ से हाथ पसार कर
प्याज मांग लेते हैं हम।
वह ठुकराता है हमारी याचना को
फिर भी हाथ फैलाते,
गिड़गिड़ाते हैं हम
और यह भूल जाते हैं-
यह प्याज उपज है
उस मुल्क की,
जिसने हमारी केसर-क्यारियों में

आतंकी पौध रोपी है।
जिसने हमारी अहिंसा पर
हिंसा की खेप थोपी है।
सात्विकता की परिभाषा
भूल गए हैं हम।
हम भूल गए हैं संयम, व्रत
और उपवास को।
हम भूल गए हैं
मान और अपमान को।
तभी तो अपनी सरकार
दाल चावल लील कर सोई है
और हमारी प्याज की अर्जी
पड़ौसी मुल्क की संसद में
कहीं खोई है।

कवि

शोषण से लड़ता
शोषित होता
संगठन को प्रोत्साहित करता
असंगठित रहता
एक व्यक्तित्त्व।

मेरा अधूरा सपना

मैंने देखा था एक सपना,
मेरा भारत मेरा है
मेरा अपना।
मेरे अध्यापक ने बताया था–
असत्य पर सत्य की जीत होती है।
अनाचार सदाचार से परास्त होता है।
निष्ठा से जीत लिया जाता है कलुषता को।
सन्मार्ग पर चलने वाला कदम
स्वयं अपना रास्ता बना लेता है।
मैंने इसे ध्यान से सुना, गुना
और देखने लगी एक सपना,
जिसमें मैंने स्वयं को बनाया निष्ठावान
और भारत में पाया गाँधी का रामराज्य
यही सपना देखते मेरा बचपन बीता
इसी को लिये मैं युवती हुई
और खोजने लगी–
सत्य, सदाचार, निष्ठा और सन्मार्ग को।
ये मुझे कहीं न मिले
मिले केवल–
असत्य, अनाचार, कलुषता और भटकाव।
जीवन भर दौड़ती और हाँफती रही।
जहाँ भी मैंने अपने सपने को
साकार करना चाहा
ढकेल दी गई, दुत्कारी गई और
बेइज्जत की गई।

आज मेरे जर्जर शरीर में
धुंधली पड़ चुकी आँखें
चेहरे पर धंसी
सँजोये हैं अधूरे सपने को
एक उम्मीद के साथ
शायद कृष्ण का पुनर्जन्म का सिद्धांत ही
सत्य हो
और मैं अगले जन्म में
पूरा कर सकूं
अपना अधूरा सपना।

आतंकी की चिठ्ठी

चार साल से गुम बेटे ने
पाती एक लिखी है माँ को।
वापस मुझे बुला लो, माँ,
फिर मुझको अपना लो, माँ।
बिछुड़ गया था जिस दिन तुम से
भटक गया हूँ मैं तब ही से।
भूल मेरे अपराधों को
मुझको गले लगा लो, माँ।
पिता नहीं पहचाने मुझको
पर तू तो पहचानी होगी।
पाठ पढ़ाये थे तूने जो
इन्सानी रिश्तों के मुझको,
भूल गया मैं कैसे उनको
हुई तुझे हैरानी होगी।
मैं तो खुद भी जान न पाया
किन राहों पर बढ़ आया हूँ?
किन हाथों का बना खिलौना?
कब किसने यह खेल सिखाया?
धन दौलत की खातिर मैं तो
भूल गया था सारे रिश्ते।
अब कुछ समझ मुझे आता है
बड़ा भयानक कर गुजरा हूँ।
कितने बेटे भटक रहे हैं
माएं कितनी तड़प रही हैं
हिम्मत करके आगे आओ
अब उनकी जान बचा लो माँ।
घर वापस मुझे बुला लो माँ
एक बार मुझे अपना लो माँ।

इस बार नहीं

हम जाग उठे, हम सजग बनें
इस बार नहीं फिर लूट सकें
बढ़ते आते ये व्यापारी
छा रहे पुनः तन-मन पर हैं।
आखिर तो अब भी ललचाता
कण-कण है अपनी माटी का।
कहीं उर्जा, कहीं सम्पदा
वन-उपवन खेत खलिहान भरे।
ये कहीं इन्हें फिर चुरा न लें
औषधीय ज्ञान सम्पत्ति को।
प्रहरी हमको बनना होगा
हर क्षण हमको जगना होगा,
आए हैं तो बस व्यापार करें,
आए हैं तो बस प्यार करें,
इस भू को अपनी भू मानें
कृषकों का शोषण नहीं करें।
आओ मिलकर भूदोहन का
हम जोरदार तिरस्कार करें।

देवो भव

अहो अतिथि को देवों सा,
योंहि नहीं माना हमने।
देवों के सभी गुणों को,
उसमें है जब जान लिया,
तभी अतिथि को देवों सा,
हमने है सम्मान दिया।
एक प्रियवर के आने से,
क्लेष सभी मिट जाते हैं,
दुःखों के काले बादल,
पल भर में छट जाते हैं।
छोड़ सभी दुविधाओं को,
स्वागत में उठ जाते हैं,
भले अभावों में हों हम,
साधन भी जुट जाते हैं।
प्रेमभाव से भोजन तो,
देवभोग बन जाता है,
जब वह भोग लगाता है,
मन प्रसन्न हो जाता है।
सुख साधन जितने भी हों,
सम्पत्ति बेशुमार रहे,
आनंदित मन होता है,
बना अतिथि सत्कार रहे।
अहो अतिथि को देवों सा,
योंहि नहीं माना हमने।

महानगर

महानगर का हुआ विकास
ऊंचे-ऊंचे बने आवास।
मंज़िल पर मंज़िल चढ़ती है
सीढ़ी पर सीढ़ी बनती हैं।
बनते हैं खिड़की दरवाज़े
छज्जा-छजली सब हैं साजे।
यहाँ धूप का नाम नहीं है
पानी का भी काम नहीं है।
माचिस की डिब्बी के जैसे
सुन्दर दिखते हैं आवास।
महानगर का हुआ विकास
ऊंचे-ऊंचे बने आवास।
सड़कें चौड़ी-चौड़ी देखो
जिन पर गाड़ी दौड़ी देखो।
बदहवास सब भाग रहे हैं
बुरी तरह से हाँफ़ रहे हैं।
रात दिन का भेद नहीं है
कोई गिरे तो खेद नहीं है।
जहाँ भीड़ सबसे ज़्यादा है
गुल रहता है वहाँ प्रकाश।
महानगर का हुआ विकास
ऊंचे-ऊंचे बने आवास।
बड़े-बड़े अफसर रहते हैं
ए.सी. में साँसें लेते हैं।
नैतिकता से गिरे हुए हैं

घोटालों से घिरे हुए हैं।
देश-धर्म को छोड़ रहे हैं
आँख मूंदकर दौड़ रहे हैं।
अगर सत्य कुछ कहना चाहो
कोई नहीं करता विश्वास।
महानगर का हुआ विकास
ऊंचे-ऊंचे बने आवास।
कुल्फी, कॉफी, बिस्कुट, टॉफी,
आइसक्रीम, पेप्सी-कोला,
चाऊमीन या पीज़ा बर्गर
खाते दिन भर लोग यहाँ पर।
बोतल का पानी पीते हैं
ये बीमारी में जीते हैं।
कभी ठीक हो जाएँगे हम
यही लगाये हैं बस आस।
महानगर का हुआ विकास
ऊंचे-ऊंचे बने आवास।

जीवन को मोड़ा है

जीवन को ऐसे मोड़ा है,
कष्टों से नाता तोड़ा है।
विपत, व्याधियाँ आती जाती,
पाठ नया हमको सिखलाती।
नहीं कभी भी है घबराना,
उनसे पार सदा ही पाना।
यही सोचकर अब जीवन में,
क्लेशों को पीछे छोड़ा है।
जीवन को ऐसे मोड़ा है,
कष्टों से नाता तोड़ा है।
अंधकार आये अब जितना,
विचलित हमें करे वो कितना।
ज्योति जलाकर श्रम की हर पल,
जीत उसे निश्चय हम लेंगे।
यही समझकर अब जीवन में,
अपने द्वंदों को छोड़ा है।
जीवन को ऐसे मोड़ा है,
कष्टों से नाता तोड़ा है।

गाँधी बाबा

गाँधी बाबा फिर से आओ,
ढूँढ़ अहिंसा को फिर लाओ।
सीमाओं पर आज हमारे,
देखो बादल मंडराते हैं।
प्रभु के दर्शन करने जाते,
कत्लेआम किये जाते हैं।
हम भी वही, अहिंसा भी है,
तब क्यों रोक नहीं पाते हैं।
भूल गए हम शायद इसकी,
कल कोई जो घुमा न पाते।
आओ मंत्र पुनः दोहराओ,
फिर से चमत्कार दिखलाओ।
गाँधी बाबा फिर से आओ,
ढूँढ़ अहिंसा को फिर लाओ।
युवा पीढ़ी नहीं समझेगी,
बच्चे समझ नहीं पाएगें।
बापू तुमने सत्याग्रह से,
बड़ों बड़ों को था दहलाया।
शस्त्र अहिंसा के आगे तब,
कुंठित शस्त्र हुए थे सारे।
जहाँ खून के प्यासे थे सब,
निशस्त्र तुम खड़े वहाँ थे।
जागृति एक बार ले आओ,
जादू जैसा असर दिखाओ।
गाँधी बाबा फिर से आओ,
ढूँढ़ अहिंसा को फिर लाओ।

कुकुरमुत्ते सी जगह-जगह पर,
कम्पनियाँ ये पनप रही हैं।
धरती रोती आज हमारी,
छिनती हमसे रोजी देखो।
पेप्सी-कोला के आगे अब,
लेमन जूस न टिकते देखो।
आज हमारे तन-मन पर है,
पड़ी विदेशी मार भयंकर।
पुनः स्वदेशी मंत्र जगाओ,
आग विदेशी की सुलगाओ।
गाँधी बाबा फिर से आओ,
ढूँढ़ अहिंसा को फिर लाओ।

शासन नहीं विखंडित होता

शासन नहीं विखंडित होता,
दास कबीरा कभी न रोता।
आँख मूँदकर तुम सोये हो,
तान चदरिया वह भी सोता।
युगों-युगों से यही सुना था,
कवि है पथ-दर्शक समाज का।
हाय मगर लुटती ये फ़सलें,
हाय मगर मिटती ये नस्लें।
देख नहीं क्यों तुम पाते हो,
सत्ता के ही गुण गाते हो।
आखिर बोलो क्या लाये हो,
जनता को क्या समझाते हो?
मात्र दूरदर्शन पर तुम तो,
झूम-झूम कर बस गाते हो।
यदि अपना कवि जागृत होता,
दुश्मन कभी न हावी होता।
शासन नहीं विखंडित होता,
दास कबीरा कभी न रोता।
आँख मूँदकर तुम सोये हो,
तान चदरिया वह भी सोता।
लुटती लाज देख ना पाते,
बच्चों पर भी तरस न खाते।
तुम से तो वह युग अच्छा था,
तुम से गद्यकार सच्चा था।
वैशाली जिसने लिख डाली,
अरे आम्रपाली रच डाली।
नहीं युवतियाँ अहो यहाँ अब,
बाला ही वैश्या बन जाती।

शोषण नहीं दलित का केवल,
शोषण बाल श्रमिक का होता।
तनिक सोचकर तो देखो तुम,
मनवा तार-तार है होता।
शासन नहीं विखंडित होता,
दास कबीरा कभी न रोता।
आँख मूँदकर तुम सोये हो,
तान चदरिया वह भी सोता।
सरकारें अब लटक रही हैं,
उद्देश्यों से भटक रही हैं।
जोड़ तोड़ में लगी हुई हैं,
किसी तरह बस टिकी हुई हैं।
वे जनता की सोचें-समझें,
समय उन्हें अब रहा कहाँ है?
उठो कवि तुम कब से हो सोए,
बस मीठे सपनों में तुम खोए?
छलका जाम रात भर तुमने,
देखा नहीं किसी को रोता।
कैसे जागृत हो समाज वह,
जहाँ स्वयं ही कवि है सोता?
शासन नहीं विखंडित होता,
दास कबीरा कभी न रोता।
आँख मूँदकर तुम सोये हो,
तान चदरिया वह भी सोता।
बिखर रहे परिवार तरसते,
नन्हें बच्चों को तुम देखो।
गिरे नैतिक-मूल्य तड़पते,
वृद्धजनों ही को तुम देखो।
जाग सको तो कविवर जागो,
आंक सको तो ख़ुद को आंको।

तुम ख़ुद कितने रीते, थोथे,
ऐसे ही क्या कवि हैं होते?
दिल में चाह अर्थ की लेकर,
मानवता का दम भरते हो।
छायावाद पूर्ण न होता,
अगर निराला ऐसा होता।
शासन नहीं विखंडित होता,
दास कबीरा कभी न रोता।
आँख मूँदकर तुम सोये हो,
तान चदरिया वह भी सोता।
कैसा लेखन तुम करते हो,
मात्र शब्द दोहन करते हो।
ताल छंद तो बहुत दूर हैं,
कविताएं अब गद्य हो गईं।
तोड़ काव्य के सारे बंधन,
नीरसता से युक्त हो गईं।
गुण औ रस का मोह त्यागकर,
काव्यशास्त्र से मुक्त हो गई।
मन इनको कैसे समझेगा?
बानी ही जब बोल ना पाती।
मानस अब तक रचा न होता,
तुलसीदास यदि ऐसा होता।
शासन नहीं विखंडित होता,
दास कबीरा कभी न रोता।
आँख मूँदकर तुम सोये हो,
तान चदरिया वह भी सोता।

नक़ाब–पोश

एक तरफ जनसंख्या वृद्धि के बढ़ते आँकड़े,
दूसरी ओर वीरान होती बस्तियाँ।
विपरीत परिस्थितियाँ पनप रही हैं एक साथ।

एक औरत थकती नहीं बच्चे पैदा करने से
एक के बाद एक जनती है जीवन भर।
एक बच्चा पैदा करने को तैयार ही नहीं।
विवाह के चंद सालों बाद चुपके से उठा लाती है।
मैटरनिटी होम से बालक।

कुछ हैं कि घर बनाते ही नहीं
सरकारी अनुदान से बने आधे अधूरे घरों को
बेचकर निकल जाते हैं
नए शहर में झुग्गी झोपड़ियाँ बसाने।
कुछ हैं कि घर बनाते हैं।
बेशुमार पूँजी खपाने को।
और कुछ घर बनाते हैं कर्ज लेकर
चुकाते हैं पाई–पाई जोड़कर जीवन भर।
एक ही शहर में बस रही हैं अलग–अलग बस्तियाँ एक साथ।

कुछ हैं कि विद्यालय जाते ही नहीं
लाख लुभावने प्रलोभनों के बाद भी।
माँ दलिया पका लेती है।
स्कूल से मिली कॉपी किताबों को चूल्हे में जलाकर।
कुछ हैं कि माता–पिता के साधनों को निचोड़कर

जाते हैं स्कूल लौटते हैं बेहाल।
माँ चूल्हा जला ही नहीं पाती बालक को पढ़ाने में।
पिता चुपके से लाकर रख देता है
डबल रोटी चौके में भूख मिटाने को।

इन हालातों को जो पालते हैं, पोसते हैं,
निचोड़ते हैं भरपूर
उनके चेहरे नकाबों से ढके हैं
वे बस्तियों से कहीं दूर बसे हैं।

मोक्ष

जितनी बार जन्मा
उतनी बार मरा मैं।
हर बार किसी ने कहा
चलो अच्छा हुआ
कष्ट से छुट्टी पाया
पर मुक्त नहीं हो पाया
जन्म मरण के चक्र से
सौ-सौ बार जन्मा
सौ-सौ बार मरा हूँ
एक ही जन्म में
कितनी ज़िंदगी जीया हूँ
मेरी वृत्तियाँ चिपकी रही मुझसे
हर जन्म में।
स्नेह, ममता, मोह, माया
में जकड़ा रहा।
बंधा रहा ईर्ष्या, द्वेष, घृणा से।
पंजा, सींग, विषदंत, विषडंक, मंत्र-तंत्र,
धर्म-कर्म हथियार बने मेरे।
अभी और न जाने कितने जन्म
जीना और मरना होगा मुझे
अपनी वृत्तियों से मोक्ष पाने को।

दुःखी था

वह दुःखी था
बहुत दुःखी था
छः साल बाद गुरूजी से मुलाकात ने
उसे द्रवित कर दिया
विह्वल सा बोला-
मुझे यहाँ से निकालो गुरूजी
मर जाऊंगा
कुछ भी नहीं है यहाँ।
गुरूजी सोचते रहे
आखिर क्या चाहता हैं
कितना कुछ तो है यहाँ
कैरियर की ऊँचाईयों तक
पहुँचने के अवसर
घर, बाजार, अस्पताल,
बिजली, पानी, कूलर, ए.सी.,
कम्प्यूटर, इन्टरनेट....
गुरूजी ने प्रश्न किया-
तुम्हारी परेशानी की वजह?
छोटी जगह है
व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं
लोग काम कम बातें अधिक करते हैं
पल-पल की खबर रखते हैं।
मैं तो किसी तरह काट भी लूंगा
पर बालक पिछड़ जाएंगे जी।
गुरूजी ने गौर किया

उसकी बात काफी हद तक सही थी।
बड़े सजे बाजारों और माल का अभाव था
लिफ्टयुक्त बहुमंजिला इमारतें नदारद थीं।
खूबसूरत पैकिंग में गुणरहित, स्वादहीन
गिफ्ट पैकेटों से लोग अनजान थे
पार्कों के फ़व्वारों, झरनों और
झुरमुटों की आड़ में
प्रौढ़ पीढ़ी को शर्मसार करते
घूमते युवा जोड़े
नजर नहीं आते थे
लोग घरों से निकलकर
मिलते-जुलते हँसते और बतियाते थे
छोटे-छोटे अवसरों पर भी
झुंड के झुंड इकट्ठे हो जाते थे
सच इस छोटे से कस्बे में
युवा पीढ़ी का पिछड़ जाना
निश्चित था और अपनी पीढ़ी के पिछड़े
भविष्य को लेकर किसी का भी
असहज हो जाना स्वभाविक था।

इन्सानियत पर सवाल

एक अवैतनिक माँ
सँभाल लेती है उतना कुछ
कि जितना कुछ
सँभाल नहीं पाती
दस वेतनभोगी माँएं भी।

एक साधनहीन पिता
उबार लेता है गरीबी से उतना
कि जितना उबार नहीं पाते
दानकर्ता दस पिता
धनाढ्य होकर भी।

होती यदि नानी, मौसी, दादी या बुआ
यूँ मौन रह न पाती
अपनी अपंगता में भी
कि जिस तरह मौन रह गई थी आया।

शारीरिक पीड़ा से गुजरी
मानसिक दुःख भोगती, दंश झेलती
ये बच्चियाँ
सवाल कई छोड़ती हैं
इन्सानियत पर।

कहो कहानी

धरती को माँ कहने वाले
ग्राम देवता हुआ तुम्हें क्या?
कुछ तो अपनी कहो कहानी
लिख डालो या कहो ज़बानी।
कहाँ गई वह सुख की रोटी
कहाँ खो गया ठंडा पानी।
छाँव नीम की थी वह गहरी
सोते चादर तान जहाँ तुम।
कहाँ गई वह गोरी गैया
पूजा करती जिसको मैया।
कहाँ खो गए छाछ, दूध वे
लोटा भर-भर पिए पिलाये।
वोटर बनने का सुख तुमको
रास आ गया है यह कैसा?
खोकर मानवता अपनी अब
खोकर खेत द्वार भी अपने।
भागीदार बने हो देखो
तुम विकास के परिहास में।
शीतल दुग्ध चाँदनी छूटी
खोए मरकरी के प्रकाश में।
बिसरों की सुध लेने वाले
भटकों को अपनाने वाले।
धरती को माँ कहने वाले
ग्राम देवता हुआ तुम्हें क्या?

श्रमिक

धान रोपते देखा तुमको
देखा रूखी सूखी खाते।
नहीं थाल में व्यंजन परसे
नहीं सेज पर नरम बिछौना।
जीवन अभी अभावों में हैं
सुबह सवेरे ही उठ जाते।
धान रोपते देखा तुमको
देखा रूखी सूखी खाते।
श्रम से चमत्कार है सारा
श्रम जीवन का बना सहारा।
बनती वही इमारत सुन्दर
श्रम से तुमने जिसे सँवारा।
धान रोपते देखा तुमको
देखा रूखी सूखी खाते।
मरुभूमि में नदियाँ बहती
खानों से हैं रत्न निकलते।
बंजर भूमि सोना उगले
लिए कुदाल जिधर तुम जाते।
धान रोपते देखा तुमको
देखा रूखी सूखी खाते।
तुम बापू के शस्त्र बने थे
तुम्हीं शास्त्री के थे नारे।
भूख मिटाते हो तुम सबकी
स्वयं अधूरा भोजन खाते।
धान रोपते देखा तुमको
देखा रूखी सूखी खाते।

वृक्ष कुछ कर रहा

देखो वृक्ष को देखो
वह कुछ कर रहा
किताबी होगा कवि जो कहेगा
हाय पत्ता झर रहा।
फूटती हैं कोपलें उसमें नई
कोमल कली फूल फल से लद रहा
कर रहा निर्माण है वह सृष्टि का
बढ़ रही है शाख उसकी स्वयं भी
और तुम कहते हो पत्ता झर रहा
गौर से देखो
वृक्ष कुछ कर रहा।
पत्र का गिरना ही तो संकेत है।
फूटना किसलय कली और पात का
आज यदि दुःख तो
सवेरा कल सुखद प्रभात का
बात इतनी सी है केवल
सृष्टि के निर्माण की
वृक्ष उसको कर रहा
और तुम कहते हो
पत्ता झर रहा
गौर से देखो
वृक्ष कुछ कर रहा

तल्ख़

महँगाई की मार ने
ऐसा किया बेज़ार
भिंडी टिंडा नहीं पके
ना ही डले अचार।

कपड़ा बस्ता बँट रहे
चैक बँटे बेशुमार
लैपटॉप की खबर से
रंगे पड़े अखबार।

पूड़ी हलवा क्या कहो
रोटी नहीं नसीब
दाल भात की मार ने
बढ़ा दिए हैं गरीब।

पेट भरे हैं सो रहे
सारे कर्णाधार
गंगी भूखी सो गई
करता कौन विचार।

भैया जी चुपचाप हैं
बहना जी बेहाल
भाषण देते थक गए
हैं कानूनी लाल।

संत राम पीटे गए
कटे बहुत बबाल
सत्ता गूंगी हो गई
आन्दोलन बदहाल।

सिक्का अपना पिट गया
लुटती है सरकार
सब कुछ अच्छा चल रहा
मिलता समाचार।

चुप्पी ऐसी साध ली
गूंगे प्रश्न हजार
जनता रही है पूछती
बातें सौ-सौ बार।

घोटालों को घोटते
होते मालामाल
छद्मवेश में घूमते
नेता बने दलाल।

बड़ बोले नेता बहुत
करें वार पर वार
प्रश्न उठे यदि स्वयं का
दिखते हैं लाचार।

संसद अब चलती नहीं
बिछे परस्पर जाल
सांसदजी हैं उड़ा रहे
बैठ भवन में माल।

अविरल गंगा

गंगा को कल-कल बहने दो
गंगा को पावन रहने दो।
भागीरथ की घोर तपस्या
शिव का आशीर्वाद मिला।
तारण को पितरों पुरखों को
गंगा को अवतरित किया।
पौराणिक गाथाएं इसको
निज वाणी में कहने दो।
गंगा को कल-कल बहने दो
गंगा को पावन रहने दो।
गंगा ने सींचा धरती को
जग की प्यास बुझाई है।
धन धान्य भरा भण्डारों में
गंगा माँ कहलाई है।
बने ना देखो भूमि बंजर
शस्य श्यामला रहने दो।
गंगा को कल-कल बहने दो
गंगा को पावन रहने दो।
नहीं पीढ़ियाँ माफ़ करेंगी
माँ गंगा यदि रूठ गई।
सौ-सौ प्रश्न उठेगें हर दिन
निर्मल धारा किधर गई।
सन्तानों की ख़ातिर अपनी
धवल धार को बहने दो।
गंगा को कल-कल बहने दो
गंगा को पावन रहने दो।
विश्व सजग अब गंगा पर है
गंगा भक्त ही सुप्त हुए।

गंगा की कितनी धाराएं
और सोते भी लुप्त हुए।
इसे न बांधों से तुम बांधो
वेग प्रवाहित रहने दो।
गंगा को कल-कल बहने दो
गंगा को पावन रहने दो।
भगवा से क्यों बांध रहे हो
गंगा सबकी थाती है।
भेद न करती जाति धर्म का
सबको नीर पिलाती है।
नहीं बहाओ विष्ठा इसमें
माँ की निष्ठा रहने दो।
गंगा को कल-कल बहने दो
गंगा को पावन रहने दो।